SHIV LAL
ADDRESS - VILLAGE – BARTUNGA, POST OFFICE- DEORGHATA, BLOCK- DABHARA, DISTRICT - SAKTI, CG

NIRMALA JANGDE
ADDRESS – PRATAPGANJ, SARANGARH DISTRICT SARANGARH – BILAIGARH CG

YAGYAWAL SAHU
ADDERSS - ACHARY SARSWATI SHISHU MANDIR RAJIM GARIYABAND CG

भारतीय राजनीति में जाति और धर्म की भूमिका : एक विवेचन

ABSTRACT

संविधान द्वारा भारत में जाति निरपेक्ष, धर्म निरपेक्ष व्यवस्था कायम की गई है परन्तु हमारी राज व्यवस्था के सम्मुख प्रमुख चुनौती जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, आज भी है। हमारा संविधान 1950 में लागू हुआ परन्तु आज भी हमारे राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो जाति और धर्म से प्रभावित न हो।

जाति और धर्म भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात संविधान व राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से आधुनिक प्रभावों ने भारतीय समाज में धीरे धीरे प्रवेश करना आरम्भ किया। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रारंभ होने के पश्चात यह धारणा विकसित हुई कि पाश्चत्य राजनीतिक संस्थाएं व लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाने से परंपरागत संस्था जातिवाद व संप्रदायवाद का अंत हो जायेगा किंतु भारत में जाति और धर्म का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ा है। भारत मे जाति और धर्म ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रवृतियो को ही प्रभावित किया है, बल्कि राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है। भारत की राजनीति में जाति और धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

KEY WORD

जाति और धर्म, राजनीतिक, आधुनिकीकरण, लोकतंत्र, मतदान

प्रस्तावना

भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहाँ अनेक जातियाँ, धर्म, भाषाएँ और संस्कृतियाँ सह–अस्तित्व में हैं। भारतीय लोकतंत्र की संरचना इन विविधताओं के बीच संतुलन बनाकर चलती है। किन्तु जाति और धर्म जैसे सामाजिक तत्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये तत्व न केवल मतदाता व्यवहार को प्रभावित करते हैं, बल्कि राजनीतिक दलों की रणनीति, चुनावी मुद्दों और नीतियों को भी दिशा देते हैं।

भारतीय राजनीति में जाति और धर्म निर्णायक कारक हैं, जो चुनावी टिकट वितरण, मतदान व्यवहार और सत्ता संरचना को गहराई से प्रभावित करते हैं। संविधान धर्मनिरपेक्षता का समर्थन करता है, लेकिन व्यवहार में जातिवाद, सामुदायिक तुष्टिकरण और 'वोट बैंक' की राजनीति (जैसे मंडल आयोग के बाद ओबीसी राजनीति का उदय) संसदीय लोकतंत्र में सामाजिक एकता के लिए चुनौती बने हुए हैं।

शोध का उद्देश्य

1. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विश्लेषण करना।
2. धर्म के राजनीतिक उपयोग और प्रभाव का अध्ययन करना।
3. जाति और धर्म आधारित राजनीति के सकारात्मक मूल्यांकन करना।
4. जाति और धर्म आधारित राजनीति के नकारात्मक पक्षों का मूल्यांकन करना।
5. लोकतंत्र पर इनके प्रभाव को समझना।

शोध पद्धति

यह शोध पत्र मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें पुस्तकों, शोध लेखों, समाचार पत्रों और सरकारी रिपोर्टों का उपयोग किया गया है।

जाति व्यवस्था

जाति व्यवस्था प्राचीन हिंदू वर्ण व्यवस्था में निहित है, जिसने समाज को चार व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया था – ब्राह्मण (पुजारी और विद्वान), क्षत्रिय (योद्धा और शासक), वैश्य (व्यापारी और व्यापारी), और शूद्र (श्रमिक और सेवक)।1 इस चार–स्तरीय व्यवस्था से बाहर तथाकथित ''अछूत'' थे, जिन्हें बाद में दलित कहा गया, जिन्हें सबसे अपमानजनक प्रकार के काम सौंपे जाते थे और बुनियादी सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। व्यवहार में, समाज को आगे हजारों जातियों (उप–जातियों) में विभाजित किया गया था, जिनमें से प्रत्येक को वंशानुगत व्यवसाय, अंतर्विवाह और क्षेत्र द्वारा परिभाषित किया गया था।

विद्वानों का मानना है कि अधिकांश भारतीय किसी जाति से संबंधित होने के प्रति सचेत हैं , जिनमें से भारत भर में हज़ारो जातियाँ हैं – आमतौर पर देखे तो किसी गाँव समूह में एक या दो दर्जन जातियाँ होती हैं। ऐतिहासिक रूप से इन समूहों को अंतर्विवाह, साझा उत्पत्ति कथाओं और पारंपरिक व्यवसायों द्वारा परिभाषित किया गया था, जो उनकी सामाजिक स्थिति निर्धारित करते थे। इसलिए, जाति केवल एक सामाजिक लेबल नहीं थी– यह एक व्यापक प्रणाली थी जो जन्म से ही व्यक्ति के जीवन के अवसरों को निर्धारित करती थी।

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका

भारतीय की राजनीति में जाति एक अति महत्वपूर्ण कारक है, जो वोट बैंक की राजनीति, उम्मीदवारों के चयन और चुनावी गठबंधनों को सीधे प्रभावित करती है। जाति मतदान व्यवहार को आकार देती है, जहाँ राजनीतिक दल जातीय समीकरणों के आधार पर लामबंदी करते हैं, जिससे सत्ता का वितरण और नीतियां प्रभावित होती हैं।

भारतीय समाजिक व्यवस्था में विद्यमान लगभग सभी धर्म में जाति का स्वरूप पाया जाता है। जाति शब्द की उत्पति स्पेनिश शब्द कास्ट से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ प्रजाति, नस्ल या जीवों का एक साझा प्रकार होता है। इसका निर्धारण जन्म के आधार पर होता है। किसी एक समूह में पैदा हुए लोंगों का जन्म के

आधार पर ही विशेषीकरण कर दिया जाता है। जन्म के आधार पर ही उनके समूह का निर्धारण हो जाता है। ये व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी प्रकार के संबंधों का निर्धारण करता है। भारत में समाज का स्तरीकरण मुख्यतः जाति के आधार पर ही होता है। यही कारण है कि जाति भारतीय राजनीति को मुख्य रूप से प्रभावित करती है।

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं

जाति और राजनीतिक पद

भारतीय राजनीति मे मन्त्रिमण्डल का निर्माण भी विशेषकर, राज्य स्तर पर जातीय भावनाओं से प्रभावित रहा है। जब किसी जाति को मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ अथवा जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व मिला, तो उस जाति के विधायकों ने अलग बैठक करके गुटबन्दी को जन्म दिया और मन्त्रिमण्डल के अस्तित्व को संकट में डाल दिया।2
मन्त्रिमण्डल में ही नहीं, अन्य उच्च राजनीतिक पदों पर भी नियुक्तियाँ जातीय दृष्टिकोण से की जाती हैं। अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों को प्रतिनिधित्व देने के लिए सत्तारूढ़ दल विशेष ध्यान देता है। इस तन्त्र को पंथनिरपेक्षता और जातीय दृष्टिकोण दोनों रूपों में देखा जा सकता है।

दल–बदल की व्यवस्था

दल–बदल की व्यवस्था भी जातिगत राजनीति के समीकरण से बहुत हद तक प्रभावित रहती हैं। अपनी जाति के प्रभाव को सशक्त बनाने के लिए दल–बदल कराके समीकरण बिठाया जाता है या अपने राजनीतिक दल को सशक्त बनाने के लिए जातीय प्रभाव का प्रयोग किया जाता है।

जाति द्वारा मतदान व्यवहार को प्रभावित करना

भारत के पिछले अधिकांश विधान सभाओं के चुनावों से यह भलीभाँति स्पष्ट होता है कि जीतेगा वही, जिसके पास पैसे और गुण्डों की ताकत है (कुछ अपवाद के साथ) और जिसके चुनाव क्षेत्र मे अपनी जाति के मतदाताओं का बहुमत होगा। कहना नहीं होगा कि इस त्रिआयामी समीकरण पर आधारित रिश्तों ने चुनाव नतीजों को बहुत हद तक प्रभावित किया है। प्रो. रजनी कोठारी के शब्दों में, ''राजनीतिज्ञ एक असमंजस की स्थिति में हैं। जहाँ एक ओर वे जातिगत भेदभाव मिटाने की बात करते हैं, वहीं दूसरी ओर जाति के आधार पर वोट बटोरने की कला में निपुणता प्राप्त करना चाहते हैं।''3 नवम्बर, 1993 के उत्तर प्रदेश तथा दूसरे राज्यों में विधान सभा चुनावों के बाद से तो जातीय राजनीति के भयंकर परिणाम देखने को मिल रहे हैं, उत्तर प्रदेश में सन् 1993 के चुनावों में पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों ओर अल्पसंख्यकों के बीच गठबन्धन की स्थिति बन गई और इसने सत्ता भी प्राप्त कर ली। सरकार तथा प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा जातिगत निर्णय लिए जाते रहे हैं, उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि राज्यों में जातिगत राजनीति के दुष्परिणामों को देखकर लोकतन्त्र और पंथनिरपेक्षता में आस्था रखने वाले लोगों का दुखी होना स्वाभाविक है। राजनीति में ऐसे नेताओं और लोगों ने प्रवेश पा

लिया है, जो जातिगत समीकरण बनाकर राजनीति को प्रदूषित करने में लगे हुए हैं। पिछले कुछ लोक सभा के चुनावों तथा राज्य विधान सभाओं के चुनावों में जातिवाद की प्रवृत्ति कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ी ही है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ऐतिहासिक रूप से गहराई तक जड़ें जमाए हुए है।

जाति और भारतीय संविधान

भारत के संविधान में भी कई जातिगत व्यवस्थाएं की गई हैं। लेकिन इनका मुख्य उद्देश्य जातिगत भाईचारे को बढावा देना और जाति विशेष को शोषण से बचाना है। मौलिक अधिकारों के तहत् समानता का अधिकार, जो बिना किसी जातिगत भेदभाव के सबको कानून के समक्ष समानता, विकास का समान अवसर, छुआछूत का विरोध आदि की बात करता है। नीति निर्देशक तत्वों के तहत् अनुच्छेद 38, जो सामाजिक न्याय की बात करता है तथा अनुच्छेद 46 जो अनुसूचित जाति और जनजातियों तथा समाज के अन्य कमजोर तबकों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए राज्य को निर्देश देता है, संविधान का अनुच्छेद 330 और 332 जो लोकसभा और राज्यसभा में दलितों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करता है। ये सभी प्रावधान समाज के कमजोर वर्ग को अन्य सक्षम वर्गों के समान सहुलियत उपलब्ध कराने के उद्देश्य से किए गए हैं।

भारतीय राजनीति में धर्म

धर्म, भारतीय राजनीति का एक बड़ा निर्धारक तत्व है। भारत में विभिन्न धर्मों के लोग निवास करते हैं। धर्म के नाम पर भारत का विभाजन हो चुका है। भारत का वर्तमान संविधान भारत में संयुक्त राज्य अमेरिका व चीन की तरह 'धर्म निरपेक्ष' (पंथ–निरपेक्ष) राज्य की स्थापना करता है, पाकिस्तान की तरह 'धर्म सापेक्ष' राज्य की नहीं। अल्पसंख्यकों में ऐसा ही विश्वास पैदा करने के लिए संविधान की प्रस्तावना में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा पंथ निरपेक्ष शब्द भी जोड़ा गया है, जिसे कि सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानन्द भारती वाद 1973 में संविधान का आधारभूत ढाँचा माना गया है, जिसका अर्थ यह है कि संविधान में ऐसा कोई संशोधन नहीं किया जा सकता जो संविधान और देश की पंथ निरपेक्षता को दूषित करे। भारत में, राजनीति में भाग लेने का आधार धर्म नहीं है। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय या व्यक्ति बड़े से बड़ा पद धारण कर सकता है। जुलाई 2002 में ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इनसे पूर्व 1997 में के. आर. नारायण राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे, जो कि ईसाई हैं। इनसे पहले भी दो मुसलमान राष्ट्रपति रह चुके हैं। (डॉ. जाकिर हुसैन और फखरुद्दीन अली अहमद), दूसरे अनेक महत्वपूर्ण पदों पर भी (जैसे सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा न्यायाधीश, राज्यपाल आदि) मुसलमान रहते आये हैं, फिर भी न जाने क्यों भारत के 'धर्म निरपेक्ष' स्वरूप को खण्डित करने का प्रयास किया जाता है, इसके लिए जहाँ कुछ विदेशी ताकतें उत्तरदायी हैं, वहाँ भारतीय राजनीति में भाग लेने वाले भी कम उत्तरदायी नहीं हैं।4

भारतीय राजनीति में धर्म की भूमिकाः

भारतीय राजनीति में धर्म की भूमिका को कई आयामों में समझा जा सकता है।

ऐतिहासिक दार्शनिक

स्वतंत्रता के बाद, भारतीय राजनीति में धर्म का उपयोग विभिन्न राजनीतिक संप्रदायों द्वारा वोट प्राप्त करने के लिए किया गया है। 1980 के दशक में, राम मंदिर आंदोलन ने भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण मोड़ लिया, और हिंदू पहचान को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके बाद, विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं ने अपने–अपने राष्ट्रमंडल संप्रदाय में धर्म को शामिल करना शुरू कर दिया।

धर्म तथा निर्वाचन

भारत में अधिकांश राजनीतिक दल और उनके नेता चुनावों में धर्म और सम्प्रदाय की दलीलों के आधार पर वोट मांगते हैं। वोट प्राप्त करने के लिए मठाधीशों, इमामों, पादरियों और साधुओं के साथ साँठ–गाँठ की जाती है। मार्च, 1977 ई. और जनवरी, 1980 ई. के लोकसभा चुनावों के दिनों में दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम की भूमिका से सरलता से यह समझा जा सकता है कि धार्मिक नेता राजनीतिक दलों से मुस्लिम सम्प्रदाय के वोटों का किस प्रकार सौदा करते रहते हैं। मिजोरम के चुनाव में जारी एक प्रपत्र में काँग्रेस (इ) ने कहा था वह ईसाई अधिकारों के लिए लड़ेगी। धर्म निरपेक्षता का हलफ उठाने (वायदा करने) के बाद भी वी. पी. सिंह ने लोकसभा चुनावों से पूर्व अदुल्ला बुखारी जैसे कट्टरवादियों से रिश्ते बनाये रखे थे।5

राजनीति में धार्मिक दबाव गुट

धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक संगठन राजनीति में सशक्त दबाव–समूहों की भूमिका का निर्वाह करने लगे हैं। ये धार्मिक समूह शासन की नीतियों को प्रभावित करते हैं और कभी–कभी अपने पक्ष में अनुकूल निर्णय भी करवाते हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दुओं की आपत्ति और आलोचना के बावजूद हिन्दू कोड बिल पास कर दिया गया, किन्तु दूसरे सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसा कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया जा सका। स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक मुस्लिम संगठनो जैसे जमीयम–उल–उलेमा–ए–हिन्द, अमारते भारिया, जमायते–इस्लामी आदि ने कम से कम तीन बातो के लिए सरकारी नीतियों को प्रभावित कर दबाव गुटों की भूमिका निर्वाह किया। ये तीन बाते है – उर्दू को संवैधानिक संरक्षण दिया जाए, अलीगढ़ विश्वविद्यालय का अल्पसंख्यक स्वरूप स्थापित किया जाए और मुस्लिम पर्सनल लॉ के विषय में कोई परिवर्तन न किया जाये।

धर्म के आधार पर पृथक राज्यों की माँग

अनेक बार परोक्ष रूप से धर्म के आधार पर पृथक् राज्यों की माँग भी का जीती है। अकाली दल द्वारा पंजाबी सूबे की माँग ऊपरी तौर से भाषायी आधार की माँग दिखाई देती है, किन्तु यथार्थ में यह धर्म के आधार पर ही पृथक् राज्य की माँग थी। पुराने पंजाब राज्य का विभाजन वस्तुतः धर्म के आधार पर ही हुआ था। इसी प्रकार नागालैण्ड के ईसाइयों को पृथक् राज्य की माँग का आधार भी धर्मगत निष्ठाएँ दी थीं।

धार्मिक अल्पसंख्यकों को समर्थन देने की नीति भारत में संसदीय लोकतंत्र को शासन की अंतिम शक्ति जनता के हाथ में मिलती है और सरकार बहुमत के आधार पर बनी रहती है इसलिए प्रत्येक राजनीतिक दल कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक अल्पसंख्यकों को समर्थन देने का प्रयास करता है ताकि वे अधिक से अधिक इस प्रकार की राजनीति को सांप्रदायिक रंग दे सकें।6

सकारात्मक प्रभाव

पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिला।
सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा मिला।
लोकतंत्र में व्यापक भागीदारी सुनिश्चित हुई।

नकारात्मक प्रभाव

समाज में विभाजन और तनाव बढ़ता है।
विकास के मुद्दे पीछे छूट जाते हैं।
सांप्रदायिक दंगे और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।
वोट बैंक की राजनीति लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करती है।

चुनौतियाँ और समाधान

चुनौतियाँ

जातिवाद और सांप्रदायिकता का बढ़ता प्रभाव
राजनीतिक स्वार्थ के लिए सामाजिक विभाजन

समाधान

शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा देना
धर्मनिरपेक्ष और समावेशी राजनीति को मजबूत करना
चुनाव आयोग द्वारा सख्त नियम लागू करना
विकास आधारित राजनीति को प्राथमिकता देना

निष्कर्ष

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि यद्यपि जाति की सकारात्मक भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती, परन्तु राजनीति में जाति का बढ़ता हस्तक्षेप लोकतन्त्र की धारणा के विरुद्ध है। वर्तमान में उच्च जाति बनाम पिछड़ी जाति का संघर्ष भी प्रमुख होता जा रहा है। आरक्षण की राजनीति भी जातिवाद को बढ़ावा दे

रही है। विपक्ष व सत्तारूढ़ दल दोनों अधिक–से–अधिक जातियों को अपने पक्ष में करने के लिए आरक्षण का प्रलोभन दे रहे हैं, राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के लिए ऐसी प्रवृत्तियों को रोका जाना चाहिए।

भारतीय राजनीति में धर्म की भूमिका एक जटिल और बहुसंख्यक आबादी है। जबकि धर्म सामाजिक एकता और नैतिक विचारधारा को बढ़ावा दिया जा सकता है, इसके आदर्श ध्रुवीकरण, विभाजन और सांप्रदायिक तनाव को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। चुनाव आयोग और आरोपियो ने धर्म के प्रति आस्था को खत्म करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ बाकी है। यह आवश्यक है कि राजनीतिक दल और नागरिक विचारधारा के सिद्धांतों का सम्मान करें और राजनीति में धर्म के उपयोग को सीमित करें।

भारतीय राजनीति में जाति और धर्म की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल है। जहाँ एक ओर ये सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करते हैं, वहीं दूसरी ओर विभाजन और संघर्ष को भी जन्म देते हैं। अतः आवश्यक है कि राजनीति में जाति और धर्म का उपयोग समाज के समग्र विकास और एकता के लिए किया जाए, न कि विभाजन के लिए।

संदर्भ सूचीः

1.ए.सी. दहीभाते, इतिहास, राम प्रसाद एण्ड संस,आगरा–3,पृ.64
2.डॉ. (श्रीमती) विनोद शर्मा, राजनीतिशास्त्र भाग 1, 2024, नव भारत पब्लिकेशन जे.जे. कॉलोनी, इंदरपुरी, सेंट्रल दिल्ली, पृ. 712
3.कोठारी रजनी कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरिर्य लाँगमन, नई दिल्ली – 1970.
4.डॉ. जे. श्यामसुन्दरम राजनीति विज्ञान, राम प्रसाद एण्ड संस, पृ. 190
5.डॉ. (श्रीमती) कविता ठक्कर, राजनीति शास्त्र,भाग–1,2022 पंचशील पुस्तक मंदिर दौंसा (राजस्थान), पृ. 595
6.https://www.purvanchalkhabar.co.in